इकाई 7 भारत में नियोजन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 आर्थिक विकास में नियोजन की भूमिका

7.3 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय पर भारत

7.4 भारत में नियोजन का विकास

- 7.4.1 नियोजन का संक्षिप्त इतिहास
- 7.4.2 नियोजन प्रक्रिया में सरकार की भूमिका
- 7.4.3 स्वतंत्र भारत में नियोजन
- 7.4.4 योजनाएँ, नियोजन मॉडल तथा उनके उद्देश्य

7.5 भारत में नियोजन अनुभव

7.6 भारत में नियोजन की उपलब्धियाँ और विफलताएँ

- 7.6.1 नियोजन की उपलब्धियाँ
- 7.6.2 नियोजन की विफलताएँ

7.7 नियोजन का बदलता परिप्रेक्ष्य

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप निम्नलिखित बातें समझ सकेंगे :

- नियोजन का महत्त्व;
- नियोजन की आवश्यकता क्यों;
- नियोजन की सीमाएँ;
- भारत के नियोजन अनुभव : इसकी उपलब्धियाँ व विफलताएँ; तथा
- 1990 के दशक में नियोजन का बदलता परिप्रेक्ष्य।

7.1 प्रस्तावना

नियोजन और कीमत प्रक्रिया के बीच तर्क-वितर्क या बहस बहुत पुरानी है। इस इकाई में इसी बहस पर चर्चा की गई है। यह एक बाहरी द्वंद्व है। ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनसे सामाजिक व आर्थिक विकास के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए इनमें समन्वय लाया जा सकता है। साथ ही, इस इकाई में आजादी के बाद भारत के नियोजन अनुभवों की चर्चा की गई है। भारत के अनुभव के आधार पर निर्देशात्मक नियोजन (planning by direction) की सीमाओं की चर्चा इकाई के अंत में की गई है।

7.2 आर्थिक विकास में नियोजन की भूमिका

एक स्वतंत्र बाज़ार प्रणाली से यह आशा की जाती है कि वह राष्ट्रीय उत्पाद को अधिकतम करेगी। यदि एक अर्थव्यवस्था कुछ निश्चित दशाओं में कार्य करें तो कुशलता से दृष्टिकोण के यही अधिकतम इष्टतम (Optimum) भी होगा। ये दशाएँ निम्नलिखित हैं :

1) **आय वितरण की असमानताएँ और गरीबी का सहन :** बाज़ार प्रणाली आय और सम्पत्ति के विवरण में असमानताएँ लाती है। यह सबको, विशेषतया असमान समाज के गरीब वर्गों को, समान अवसर नहीं देती है। अत: वास्तविकता यह है कि आय और सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं पर कुछ अंकुश लगाने की आवश्यकता है।

2) **सार्वजनिक वस्तुओं की अनुपलब्धता :** समाज के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन नहीं होता, केवल बाज़ार के लिए होता है। लेकिन वास्तव में कुछ न कुछ वस्तुएँ व सेवाएँ समाज के लिए बनाई जाती हैं जैसे राष्ट्रीय रक्षा, सड़कें, पुल, प्रदूषण नियंत्रण उपाय आदि। यदि सभी कुछ बाज़ार पर छोड़ दिया जाए तो इन वस्तुओं से सेवाओं का उत्पादन शायद कभी नहीं होगा।

3) **उत्पादन प्रक्रिया के साथ कोई बाहरीपन (Externalities) नहीं जुड़े हैं :** कुछ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में कुछ ऐसी लागतें और लाभ होते हैं जिनका लेखा-जोखा बाज़ार प्रणाली में नहीं आता। ये कुछ ऐसी वस्तुएँ व सेवाएँ हैं जैसे प्राथमिक शिक्षा, आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाएँ, पीने का पानी, सफाई आदि। इन सेवाओं में सकारात्मक बाहरीपन (Positive externalities) होता है। इसी तरह दवाइयों से होने वाली कुछ हानियों के रूप में लागत बाज़ार प्रणाली नहीं गिनती है। अत: बाहरीपन के लेखे-जोखे के लिए बाज़ार प्रणाली पर निर्भर नहीं किया जा सकता।

4) **उत्पादन में पैमान के बढ़ते प्रतिफल नहीं हैं :** ये वे उद्योग हैं जिनकी उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ लागत गिरती चली जाती है। इनमें दूरसंचार, बिजली वितरण, प्रसारण, रेलवे, जल यातायात, सिंचाई परियोजनाएँ आदि आते हैं। अत: यदि ये सब बाज़ार के भरोसे छोड़ दिए जाएँ तो शायद इनका थोड़ा बहुत उत्पादन हो, और शायद न भी हो क्योंकि इनका कुशलता के स्तर पर उत्पादन करने पर हानि होने की संभावना रहती है।

इसी तरह, अधिकतर विकासशील देशों में यह संभव है कि भूख और अकाल से निवारण के लिए जितनी अनाज की आवश्यकता है, बाज़ार कीमतों के आधार पर किसान उससे कम उत्पादन करें। बाज़ार प्रणाली की इन विकृतियों की संभावनाओं को देखते हुए ऐसा लगता है कि शायद इस प्रणाली से वांछित परिणाम न प्राप्त हों।

अत: एक ऐसी आर्थिक नीति की आवश्यकता है जो युक्तिमूलक, सुविचारित, सुसंगत और समन्वित हो। ऐसी नीति को ही नियोजन कहा जाता है। नियोजन का उद्देश्य वितरण असमानताओं को न्यूनतम रख राष्ट्रीय आय की संरचना को ईष्टतम करते हुए अधिकतम राष्ट्रीय आय सुनिश्चित करना है।

इस हेतु अप्रत्यक्ष व प्रत्यक्ष दोनों प्रकार के उपाय अपनाए जा सकते हैं। अप्रत्यक्ष उपाय मौद्रिक, राजकोषीय व वाणिज्यिक नीतियों के रूप में होते हैं। जिन्हें सांकेतिक नियोजन (indicative planning) कहते हैं। अप्रत्यक्ष उपाय सार्वजनिक निवेश के रूप में होते हैं। अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण में सरकार, नियोजन के उद्देश्यों को, आर्थिक गतिविधि से संबंधित नीतियों और विनियमन रूपरेखा में परिवर्तन लाकर पूरा करती है। फ्रांस इसका एक सबसे अच्छा उदाहरण है। भारत ने भी इस दृष्टिकोण का कृषि विकास को वांछित दिशा में ले जाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। दूसरी और प्रत्यक्ष दृष्टिकोण आर्थिक गतिविधि में सरकार के सीधे हस्तक्षेप पर आधारित है। इसमें नियोजन के उद्देश्य सरकार के स्वामित्व में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के माध्यम से पूरे किए जाते हैं। यह दृष्टिकोण भारत में औद्योगिक क्षेत्र के तीव्र विकास के लिए प्रयोग किया गया है।

बोध प्रश्न 1

1) आपके विचार में बाज़ार में प्रणाली की तीन महत्त्वपूर्ण सीमाएँ क्या-क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नियोजन के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण के बीच अंतर संक्षेप में समझाइए। (पाँच वाक्यों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

3) विकासशील देशों के लिए नियोजन क्यों महत्त्वपूर्ण है? (6 वाक्यों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत

1947 में आज़ादी के समय भारत की क्या दशा थी? यह गरीब तो था ही लेकिन इससे भी अधिक यह पूर्णतया अवरुद्ध (stagnant) था। औसत आयु केवल 33 वर्ष थी। आज़ादी से कुछ वर्ष पहले 1943 में भारी अकाल पड़ा था। इसमें 30 लाख लोग मारे गए थे। लेकिन इस अकाल का संबंध भोजन की कमी से न था क्योंकि यह उस समय खाद्यान्नों की उपज अपेक्षाकृत अच्छी थी।

आज़ादी के समय भारतीय अर्थव्यवस्था प्रमुख तौरपर ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी हालाँकि इसकी 85 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती थी, कृषि और संबंधित कार्यों से रोज़ी-रोटी कमाती थी और पारम्परिक और कम उत्पादिता वाली उत्पादन विधियाँ प्रयोग में लाती थी। भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का इस बात से भी पता चलता है कि इसका व्यावहारिक ढाँचा असंतुलित था क्योंकि इसकी 75 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या खेती में लगी थी। खेती में इतनी जनसंख्या लगे होने के बावजूद भी भारत खाद्यान्न और उद्योगों के लिए कच्चे माल के मामले में आत्मनिर्भर नहीं था। भोजन की औसत उपलब्धता, मात्रा और गुणवत्ता, दोनों ही दृष्टिकोणों से न केवल कम थी बल्कि अनिश्चित भी थी जैसा कि बार-बार होने वाले अकालों से पता चलता था। निरक्षरता 84 प्रतिशत थी। वर्ष 6-11 वर्ग में लगभग 60 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। छूत की बीमारियाँ बहुत फैली हुई थीं। कोई अच्छी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली न होने के कारण मृत्युदर 27 प्रति हज़ार थी। अत: अर्थव्यवस्था में व्यापक गरीबी, अज्ञानता और बीमारी थी। साधनों के असमान वितरण ने स्थिति को और गंभीर बना दिया था।

7.4 भारत में नियोजन का विकास

एक निश्चित समयावधि में कुछ उद्देश्य पूरा करने हेतु भारत में नीति निर्धारकों ने नियोजन की प्रक्रिया प्रारंभ की। उनका विशेष ध्यान निम्नलिखित की ओर था :

i) जीवन स्तर में तेज़ी से सुधार लाना।

ii) औद्योगिक रूप से विकसित देशों के जीवन स्तर तक पहुँचना;

iii) ऐसे उत्पादों का उत्पादन करना जिससे संवृद्धि निरंतर और लम्बे समय तक कायम; तथा

iv) देश में असमानताओं और गरीबी में कमी लाना।

इस हेतु संवृद्धि की दर में तेज़ी लाना अत्यंत आवश्यक था क्योंकि एक तेज़ी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में विभिन्न समस्याओं से निबटना आसान होता है।

संवृद्धि तेज़ करने और संरचलनात्मक परिवर्तन लाने में राज्य की भूमिका को तो आजादी से पहले ही स्वीकारा जा चुका था। यदि हम नियोजन के पहले के प्रयत्नों का विश्लेषण करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। ये प्रयत्न इस प्रकार थे :

7.4.1 नियोजन का संक्षिप्त इतिहास

1) **राष्ट्रीय नियोजन कमेटी (The National Planning Committee):** भारत में नियोजन के निर्माता जवाहरलाल नेहरू थे। 1938 में उनकी अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन कमेटी (The National Planning Committee) यानि NPC की स्थापना हुई थी। कमेटी ने नियोजन के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर आर्थिक विकास से संबंधित विभिन्न विषयों पर अध्ययन तैयार किए। कमेटी ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं :

   i) सरकार को सभी मूल उद्योगों और सेवाओं, खनिज संसाधन, रेलवे, जल यातायात, जहाज़रानी व अन्य सार्वजनिक उपयोगिताओं तथा वे सभी बड़े पैमाने के उद्योग जिनमें एकाधिकार पनपने की संभावना रहती है, को अपने हाथ में ले या फिर उन पर नियंत्रण रखें;

   ii) राष्ट्रीय नियोजन बनाने में कृषि की निर्णायक भूमिका है; और

   iii) नियोजन का उद्देश्य अगले 10 वर्षों में लोगों के जीवन स्तर में दुगना सुधार होना चाहिए।

2) **गाँधी योजना (Gandhian Plan):** महात्मा गाँधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे और उन्होंने आर्थिक संवृद्धि का कोई मॉडल भी विकसित नहीं किया। लेकिन उन्होंने भारतीय कृषि, लघु उद्योगों, आदि के बारे में कुछ नीतियों का समर्थन किया। इन नीतियों को शामिल करते हुए 1944 में श्रीमन् नारायण व आचार्य एस.एन. अग्रवाल ने एक गाँधी योजना तैयार की। यही मॉडल गाँधी नियोजन का आधार है। इसे कभी-कभी 'विकास का गाँधी मॉडल' भी कहते हैं।

राष्ट्रीय नियोजन कमेटी के साथ-साथ आठ उद्योगपतियों ने 'आर्थिक विकास की एक योजना' बनाई जिसे बम्बई योजना (Bombay Plan) के नाम से जाना जाता है। प्रसिद्ध क्रांतिकारी एम.एन. रॉय ने भी एक योजना बनाई जिसे जनता योजना (People's Plan) के नाम से जाना जाता है।

इन सभी योजनाओं का केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रहा क्योंकि इन्हें लागू करने का कभी मौक़ा ही नहीं मिला। ये केवल कागज़ पर ही रहीं। लेकिन इन सभी योजनाओं से भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की प्रक्रिया में राज्य की भूमिका के बारे में आम सहमति थी।

7.4.2 नियोजन प्रक्रिया में राज्य की भूमिका

1950 के दशक के प्रारंभ में ऐसा माना जाता था कि घरेलू बचत की दर बढ़ाने और इसका अधिक उत्पादक कार्यों में प्रयोग करने में एक विकासशील अर्थव्यवस्था में राज्य एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता था।

भारतीय अर्थव्यवस्था एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। इसकी भू-काश्तकारी प्रणाली कुछ इस प्रकार की थी कि किसानों और कृषि मज़दूरों के पास अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो अतिरेक (Surplus) बचता वह खेती नहीं कर रहे भू-स्वामी व बिचौलिए (विशेषतया जमींदारी प्रणाली व सामंती काश्तकारी प्रणालियों में) ले जाते थे और गैर-ज़रूरी उपभोग पर खर्च कर देते थे। ऐसी शोषणकारी और सामाजिक तौर पर अपव्ययी प्रणालियों को समाप्त कर देने के पश्चात् जो अतिरेक बचा वह अब भूमि सुधारों के माध्यम से उत्पादक निवेश में लगाया जा सकता था (भूमि सुधार से अभिप्राय बड़े किसानों में भूमि लेकर भूमिहीन कृषि

मज़दूरों को भूमि देना भी था)। इससे भूमि की उत्पादकता के साथ-साथ ग्रामीण गरीबों की आर्थिक दशा भी सुधरती है क्योंकि इनमें अधिकतर भूमिहीन खेती श्रमिक थे। इस अतिरेक को सही ढंग से प्राप्त करने और प्रयोग करने में भूमि सुधारों व कृषि कर प्रणाली दोनों का योगदान था। दोनों में ही कड़े सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता थी।

राज्य को प्रारंभिक शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा, शुद्ध पीने का जल व अन्य सुविधाएँ दिलाने की ज़िम्मेदारी तो निभानी होगी। किसी भी सभ्य समाज में ये सभी आधारभूत आवश्यकताएँ होती हैं और भारतीय अर्थव्यवस्था में इन सभी की बहुत कमी थी। इन सबका उत्पादकता के स्तर पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन सब सुविधाओं से सकारात्मक बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। अत: इनमें राज्य का हस्तक्षेप ठीक माना जाता। (इसी इकाई के भाग 7.2 में दशा नम्बर 3)

सड़कों के जाल, बड़े सिंचाई परियोजनाओं, इस्पात के कारखाने, रेलवे आदि के लिए इतने बड़े स्तर पर निवेश की आवश्यकता होती है कि यह व्यक्तिगत निवेशकों की क्षमता से बाहर होती है। ये एक प्रकार के स्वाभाविक एकाधिकार (natural manopolies) हैं। (जिन्हें सार्वजनिक उपयोगिताएँ भी कहते हैं)। इनको एक ऐसा वर्ग माना जाता है जिसमें राज्य का हस्तक्षेप उचित माना जाता है। भाग 7.2, दशा नम्बर 2)। यदि निजी क्षेत्र को आज्ञा भी दे दी जाए तो भी मानकस्तर, कुशलता के मापदंड, निवेश पर प्रतिफल की उचित दर जैसे अन्य तत्त्वों को लागू करने की आवश्यकता बनी रहती है। इन सबके लिए राज्य के कायदे कानून की आवश्यकता रहती है। चाहे ये सब राज्य के सीधे स्वामित्व में न हो।

सरकार ऐसी दशाएँ पैदा करके जिससे कि लोग अधिक निवेश करने के लिए उत्साहित हों विकास में सहायता कर सकती है। नीची बचत दर निम्न आय-स्तर का संकेतक है। एक अवरुद्ध-सी और मंदगति से आगे बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए लाभदायक अवसर सीमित होते हैं। सरकारी हस्तक्षेप निवेश के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने में सहायता कर सकता है। 1960 के दशक के मध्य तक तो यह भूमिका सरकार ने बखूबी अदा की थी लेकिन बाद में अपने आपको बहुत से आर्थिक कार्यों में उलझाने से शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई आदि के क्षेत्र में अपनी भूमिका की अनदेखी कर दी।

बेकार या अल्पनियोजित श्रम को सार्वजनिक तौर पर जुटा कर सड़कें, सिंचाई, नहरें, भूमि सुधार, स्कूल, ग्रामीण हस्पताल, आदि के रूप में उत्पादक परिसम्पत्तियाँ बनाई जा सकती हैं। इससे निजी संसाधनों की संभावित उत्पादिता बढ़ती है और आगे निजी निवेश के लाभदायक अवसर पैदा होते हैं। कुछ दशाओं में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि वस्तुओं और सेवाओं की अतिरिक्त माँग में वृद्धि लाकर लाभदायक निवेश का दायरा बढ़ा सकती है। ये दोनों प्रभाव और भी मजबूत हो सकते हैं यदि संतुलित विकास के लिए कोई समन्वित निवेश कार्यक्रम हो। इससे यह सुनिश्चित हो सकता है कि मूल आगतों एवं सेवाओं की बढ़ती हुई माँग के साथ-साथ उनकी पूर्ति में भी वृद्धि हो। यदि क्रियाएँ परस्पर संबंधित हों तो इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। यदि कार्यक्रम समन्वित हो तो वस्तुओं और सेवाओं की कमी या अधिकता होने का डर कम हो जाता है। जोखिम कम होने से व्यवसाय में अधिक निवेश करने के लिए उद्यमी उत्साहित होता है।

बोध प्रश्न 2

1) नियोजन प्रक्रिया में सरकार की क्या भूमिका है? दो उदाहरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.4.3 स्वतंत्र भारत में नियोजन

आज़ादी प्राप्त करने के पश्चात् ही भारत में नियोजन प्रक्रिया प्रारंभ हुई। भारत सरकार ने मार्च, 1950 में योजना की पूरी ज़िम्मेदार योजना आयोग को सौंपी गई। आयोग का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत था :

क) देश को भौतिक पूँजी और मानव संसाधनों की आवश्यकताओं का अनुमान लगाना तथा उनके संतुलित और प्रभावशाली उपयोग के लिए योजना बनाना,

ख) सभी महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को उनके लागू करने की अनुमति देने से पूर्व उनकी समीक्षा करना,

ग) विकास में प्रयोग आने वाले संसाधनों का निर्धारण करना और उनका विभिन्न उपयोगों और उपयोगकर्ताओं के बीच बँटवारा करना, और

घ) उनकी प्रगति पर निगरानी रखना और समीक्षा करना।

हालाँकि औपचारिक तौरपर आयोग एक सलाहकार निकाय है, लेकिन ऐसी आशा थी कि विकास के बारे में नीति संबंधी सभी प्रमुख विषयों पर इसकी सलाह ली जाएगी। इसकी संरचना कुछ इस प्रकार की थी कि सभी महत्त्वपूर्ण मामलों पर इसे विशेषज्ञ पेशेवर राय मिल सके और इसकी सलाह का सरकार की नीतियों पर प्रभाव पड़ सके।

उत्तरोत्तर पंचवर्षीय योजनाएँ विकास संबंधी नीतियों, कार्यक्रमों व प्राथमिकताओं को दृढ़ता प्रदान करती रही है ताकि लोकतंत्रीय राज्यव्यवस्था एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूपरेखा 'सामाजिक विकास के साथ संवृद्धि' की कल्पना को साकार किया जा सके। उत्तरोत्तर योजनाओं का रूप और विषयवस्तु एक निश्चित विकासवादी प्रक्रिया से विकास की संभावनाओं और बाध्यताओं के बारे में विभिन्न समयों पर बदलते विचारों और ज्ञान, विभिन्न उद्देश्यों पर तुलनात्मक बल, तथा राजनीतिक और आर्थिक अपेक्षाओं की विवशता का पता चलता है।

भारत में आर्थिक विकास का आधारभूत उद्देश्य संवृद्धि, अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय (मुख्यत: आर्थिक असमानताओं को कम करना और गरीबी को मिटाना) रहा है।

7.4.4 योजनाएँ, नियोजन-मॉडल व उनके उद्देश्य

अप्रैल 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के लागू होने से एक ऐसी विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई जिसका उद्देश्य केवल लोगों के जीवन स्तर ऊँचे करना ही नहीं था, उनको बेहतर और विविध जीवन के लिए नए-नए अवसर भी प्रदान करना था। यह सब कुछ संवृद्धि व सामाजिक न्याय से प्रेरित नियोजन द्वारा प्राप्त करना था।

प्रथम योजना में योजना की आवश्यकता और राज्य की भूमिका स्पष्ट शब्दों में बताई गई है। इसके अनुसार नियोजन में कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं जिनके आधार पर नीतियाँ बनती हैं, यह नीतियाँ इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाई जाती है, समस्याओं का तर्क संगत समाधान ढूँढा जाता है, साधनों और आवश्यकताओं के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार प्रोफेसर वैद्यनाथन (1995) के अनुसार योजना की तीन प्रमुख बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :

1) विकास प्रक्रिया शुरू करने हेतु उपलब्ध संसाधनों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करने हेतु नियोजन एक माध्यम है;

2) यह इस बात पर बल देता है कि केवल वर्तमान सम्पत्ति की असमानताएँ कम करके या फिर उत्पादन बढ़ाकर गरीबी दूर नहीं की जा सकती। वर्तमान सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के अंतर्गत आर्थिक गतिविधियों को तेज़ करने हेतु उद्देश्यपूर्ण हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी और रूपरेखा में परिवर्तन लाने होंगे ताकि लोगों की मूलभूत इच्छाओं को पूरा किया जा सके। इन इच्छाओं की झलक इनमें मिलती है : रोज़गार का अधिकार, शिक्षा का उपयुक्त आय, वृद्धों बीमारों तथा विकलांगों की सुरक्षा और यह सुनिश्चतता की देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोगी जन साधारण की भलाई के लिए हो रहा है। यह भी देखना होगा कि इससे सम्पत्ति और शक्ति केवल कुछ लोगों के हाथ में ही केन्द्रित न हो जाए; और

3) यह भी स्वीकार किया जाता है कि नियोजक सर्वज्ञ नहीं होते। तथ्यों के बारे में हमारा ज्ञान काफी अधूरा रहता है और नीति बनाते समय अनुमानों का सहारा लेना आवश्यक होता है। अनुभव से हमें निरंतर सबक लेना पड़ता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना वित्त वर्ष 1950-51 में प्रारंभ हुई। इसके पश्चात् कई पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं। भारत में नियोजन प्रक्रिया मजबूत सैद्धांतिक नींव पर आधारित है। सभी पंचवर्षीय योजनाएँ नियोजन के विभिन्न

नमूनों (Models) पर आधारित रही हैं। प्रथम योजना (1951-56) हेरड-होमर संवृद्धि मॉडल (Harrod-Domar Growth Model) पर आधारित थीं। इस मॉडल के परिणाम को एक साधारण साम्य के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$I \times (1/\alpha) \neq I \times \sigma$

जहाँ I = निवेश स्तर

α = सीमांत बचत दर

σ = सीमांत उत्पाद-पूँजी अनुपात

ये अवधारणाएँ पिछली इकाई में विस्तारपूर्वक समझाई गई हैं। दूसरी योजना (1951-56) संशोधित सोवियत मॉडल पर आधारित थी। इसे पी.सी. महालनोबिस (P.C. Mahalanobis) ने विकसित किया था। यह एक दो क्षेत्रीय मॉडल था जिसमें उपभोक्ता वस्तुएँ और पूँजीगत वस्तुएँ दो क्षेत्र थे। इस मॉडल में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र पर बल दिया गया था। दूसरी योजना का महालनोबिस मॉडल भारतीय नियोजन का केन्द्र था।

तीसरी योजना (1961-66) योजना आयोग के भावी नियोजन प्रभाग (Perspective Planning Division) में पंत व लिटिल (Pant and Little) के कार्य पर आधारित थी। माने व रुद्रा (Manne and Rudra) ने चौथी योजना का संगति मॉडल (Consistency Model) तैयार किया।

चार पंचवर्षीय योजनाओं के मॉडल गैर-सरकारी (Unofficial) कहे जाते हैं क्योंकि ये निजी शोधकर्ताओं के शोध के परिणाम थे। सरकारी दर्जा केवल पाँचवीं योजना के मॉडल में अमीरों से गरीबों की ओर पुनर्वितरण स्पष्ट रूप से शामिल किया गया। छठी योजना का मॉडल पाँचवीं योजना का मॉडल का विस्तार मात्र था। इस योजना में माँग पूर्ति ढाँचे में हेरड-डोमर मॉडल और पिछली योजनाओं की आगत-निर्गत दृष्टिकोणों को एकीकरण किया गया। सातवीं योजना (1985-90) अगले 15 वर्ष को ध्यान में रखकर बनाई गई। इसका उद्देश्य भविष्य में संभव उपलब्धियों के बारे में सोचना और इसे वास्तविकता का रूप देना है। इस योजना में संवृद्धि दर को 5 प्रतिशत पर स्थिर रखने का उद्देश्य रखा गया। आठवीं योजना का मॉडल भी सातवीं पंचवर्षीय योजना के मॉडल पर आधारित था। लेकिन इस योजना में राज्य की प्रत्यक्ष भूमिका जो कि पंचवर्षीय योजना के मॉडल पर आधारित थी, को काफी कम कर दिया गया। नवीं योजना भी इसी अवधारणा पर आधारित है जिसमें राज्य की भूमिका में कमी आई है।

तालिका-1 में सभी योजनाओं के दर्शन, उनके उद्देश्य और एक योजना के बाद दूसरी योजना के शुरू होने में देरी के कारण बताए गए हैं।

तालिका 1 : भारत में पंचवर्षीय योजनाएँ

योजना	योजना अवधि	प्राथमिकताएँ	देरी के कारण
प्रथम योजना	1951-56	कृषि	
दूसरी योजना	1956-61	भारी उद्योग	
तीसरी योजना	1961-66	कृषि व भारी उद्योग	
वार्षिक योजनाएँ (तीन)	1966-69	समेकन	दो युद्धों और दो उत्तरोत्तर सूखा पड़ने के कारण योजना अवकाश
चौथी योजना	1969-74	गरीबी उन्मूलन	
पाँचवीं योजना	1974-79	गरीबी उन्मूलन आत्मनिर्भरता	1977 में सरकार बदलने के कारण इस योजना ने अपनी अवधि पूरी नहीं की
छठी योजना का वार्षिक योजना में परिवर्तन	1979-80	रोज़गार	1980 में सरकार बदलने के कारण अपनी अवधि पूरी न कर सकी

छठी योजना	1980-85	रोज़गार व खाद्यान्न उत्पादन	दुबारा बनाई गई
सातवीं	1985-90	ऊर्जा, रोज़गार, खाद्यान्न उत्पादन और उत्पादिता में वृद्धि।	
वार्षिक योजनाएँ	1990-92		दो सरकारें बदलने के कारण योजना बनाई नहीं जा सकी।
आठवीं योजना	1992-97		आर्थिक संवृद्धि आधारिक संरचना रोज़गार और उदारीकरण
नवीं योजना	1997-2002		संवृद्धि, रोज़गार आधारिक संरचना, कृषि, ग्रामीण विकास, पर्यावरण संरक्षण

बोध प्रश्न 3

1) प्रथम पंचवर्षीय योजना की क्या अवधि थी?

   क) 1947-53

   ख) 1951-56

   ग) 1950-51

   घ) 1948-53

2) आठवीं पंचवर्षीय योजना की क्या अवधि थी :

   क) 1980-85

   ख) 1985-90

   ग) 1992-97

   घ) 1978-83

3) भारत में कितनी पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं :

   क) 5

   ख) 7

   ग) 8

   घ) 10

4) भारत में योजना आयोग की स्थापना कब हुई?

   क) 1938

   ख) 1947

   ग) 1950

   घ) 1948

5) भारत में नियोजन के विस्तृत उद्देश्य क्या हैं? उनको संक्षेप में बताइए।

   .....

   .....

7.5 भारत में नियोजन अनुभव

भारत में नियोजन का प्रारंभ राज्य के जोरदार हस्तक्षेप के साथ हुआ। लेकिन फिर भी अन्य समाजवादी देशों की तुलना में कुछ मूल अंतर थे। समाजवादी देशों में निजी सम्पत्ति लगभग समाप्त कर दी गई थी, उत्पादन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था, उत्पादन और विनिमय गतिविधियाँ योजना प्राधिकारी द्वारा निर्धारत लक्ष्यों के अनुसार होनी थी। भारत में अधिकतर उत्पादन साधन निजी रहे हैं और निजी हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के बावजूद लगभग आधे से भी अधिक पूँजी निजी क्षेत्र के पास है, और लगभग तीन चौथाई उत्पादन निजी क्षेत्र करता है। अर्थव्यवस्था के अधिकतर भाग में बाज़ार प्रणाली सक्रिय है। चाहे यह अपूर्ण व विकृत ही क्यों न हो।

भारत में राज्य की किसी भी निजी सम्पत्ति को बिना मुआवजा दिए अपने हाथ में नहीं ले सकता। निजी सम्पत्ति को यह कानूनी सुरक्षा प्राप्त है। भूमि सुधार के साधारण से कार्यक्रम और कुछ क्षेत्रों पर राज्य का नियंत्रण, जैसे रेलवे, कोयला खानें व वित्तीय संस्थाओं, को छोड़कर राज्य ने किसी बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण नहीं किया है। निजी क्षेत्र की गतिविधियों को नियंत्रण में रखने के लिए सरकार ने केवल कुछ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष मिले-जुले नियंत्रणों का सहारा ही लिया है। गरीबी हटाने और असमानताएँ दूर करने के प्रयत्नों में राजकोषीय नीति का सहारा लिया गया है। इसमें सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों के निर्धारण प्रमुख हैं।

नियोजन से भारत में बहुत से सरंचनात्मक परिवर्तन आए हैं लेकिन उतने नहीं जितने की नियोजक चाहते थे। औद्योगिक परिवर्तन से आम जनता को होने वाली कठिनाइयों से बचने के लिए भी नियोजन का सहारा लिया गया। 1950 के दशक में देश-विदेश दोनों में भारत की विकास संभावनाएँ बहुत अधिक दिखाई देती थीं। यहाँ की सरकार स्थिर थी, काफी संख्या में विशिष्ट शिक्षित वर्ग था, नियोजित विकास की ओर वचनबद्धता थी और रक्षा व्यय काफी कम था। नेहरू का समाजवादी ढाँचे पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिकल्पना माओ के कम्युनिस्ट चीन के विकास मॉडल का एक जवाब था।

1960 के दशक में वातावरण में तेज़ी से बदलाव आया। दो वर्ष निरंतर सूखे की स्थिति, चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध, तीन वर्ष तक योजना अवकाश, भारी मात्रा में खाद्यान्न के आयात सदृश घटनाओं के कारण अंतरराष्ट्रीय बोध में परिवर्तन आया। देश के भीतर भी अनिश्चितता बढ़ी। बचत दर गिरी। आधारभूत क्षेत्रों, जैसे इस्पात व पूँजीगत वस्तुओं, में अधिक्षमता (excess capacity) दिखाई देने लगी। ऐसा साफ नजर आ रहा था कि आगे वाले वर्षों में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता एक समस्या बनी रहेगी।

लेकिन व्यवस्था बिगड़ी नहीं। नीतियों में कुछ परिवर्तन कर कृषि उत्पादन, विशेषतया खाद्यान्न को बढ़ाया गया। सूखे के दस वर्ष के भीतर ही सभी सूचकों में सुधार हुआ और वे ऊपर की ओर जाने लगे। ऐसा उस समय हुआ जब विश्व एक बड़ी मंदी (recession) की स्थिति से गुजर रहा था, बहुत से देश जो साठ और सत्तर के दशक में सफलता की सीढ़ियाँ पार कर चुके थे, नकारात्मक या फिर मामूली सकारात्मक संवृद्धि दिखा रहे थे। लेकिन 1990 के दशक के उपकरण के रूप में केन्द्रित नियोजन पद्धति की खुलकर आलोचना होने लगी थी। विश्व अब विकेन्द्रित और सांकेतिक नियोजन (decentralised and indicative planning) की तरफ झुक रहा था। पूर्वी एशिया की अर्थव्यवस्थाओं (दक्षिण कोरिया, हांगकांग, तायवान, सिंगापुर, थाईलैण्ड, मलेशिया) का भव्य विकास अनुभव बता रहा था कि बाज़ार प्रणाली के माध्यम से अप्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप विकास प्रक्रिया अच्छी भूमिका निभा सकता है (यह सांकेतिक योजना का एक उदाहरण है)।

परिणामस्वरूप, नियोजन की भूमिका में परिवर्तन आ रहे हैं। सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन दिए जा रहे हैं। इस प्रकार की नियोजन रणनीति का फ्रांस भी एक सफल उदाहरण है।

7.6 भारत में नियोजन की उपलब्धियाँ और विफलताएँ

भारत में नियोजन के पचास वर्ष पूरे होने को हैं। अत: यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि सामाजिक व आर्थिक विकास उद्देश्यों की प्राप्ति में यह कितनी सफल या असफल रही हैं।

7.6.1 नियोजन की उपलब्धियाँ

50 वर्ष की नियोजना का मूल्यांकन करते हुए हम यह गर्व महसूस कर सकते हैं कि इस अवधि में हमारी अवरुद्ध और निर्भर अर्थव्यवस्था आधुनिक और आत्मनिर्भर हो गई है। जनसंख्या वृद्धि के बावजूद प्रति व्यक्ति आय में साधारण वृद्धि होती रही है।

भारत में नियोजन की उपलब्धियों की सूची में निम्नलिखित शामिल की जा सकती हैं (तालिका-2 देखिए)।

तालिका 2 : विकास के कुछ सूचक

	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96	1999-2000
आर्थिक सूचक							
औद्योगिक उत्पादन सूचकांक	7.9	15.6	28.1	43.1	91.6	123.3	154.7
कृषि उत्पादन सूचकांक (1980-81 पर आधारित)	46.2	68.8	85.9	102.1	148.4	160.7	178.6 (P*)
खाद्यान्न (लाख टन)	50.8	82.0	108.4	129.6	176.4	180.4	208.9
तैयार इस्पात (लाख टन)	1.0	2.4	4.6	6.8	13.5	21.4	27.2
सीमेंट (लाख टन)	2.7	8.0	14.3	18.6	48.3	69.5	100.2
कोयला (लाख टन)	32.3	55.2	76.3	119.0	225.5	292.3	322.1
कच्चा तेल (लाख टन)	0.3	0.5	6.8	10.5	33.0	35.1	31.9
बिजली उत्पादन (TWH) (करोड़ किलोवाट)	5.1	16.9	55.8	110.8	264.3	379.9	480.7 (P*)
थोक कीमत सूचकांक 1993-94	6.8	7.9	14.3	36.8	73.7	121.6	145.3
उपभोक्ता कीमत सूचकांक (1982 पर आधारित)	17	21	38	81	193	313	428
सामाजिक सूचकांक							
जनसंख्या (करोड़)	361.1	439.2	548.3	683.3	846.3	915.9	...
जन्मदर (प्रति 1000)	39.9	41.7	41.2	37.2	29.5	28.3	...
मृत्युदर (प्रति 1000)	27.4	22.8	19.0	15.0	9.8	9.0	...
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	32.1	41.3	45.6	50.4	...	60.8	...
साक्षरता दर (प्रतिशत)	18.33	28.31	34.45	43.56	52.2	...	...

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त मंत्रालय

I) आर्थिक उन्नति के सूचक

1) आर्थिक उन्नति के प्रमुख सूचक

i) 1950-51 से 1999-2000 की अवधि में स्थिर कीमतों पर साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा। 1990 के दशक में यह औसत 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई।

ii) 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में जो बचत दर 10.4 प्रतिशत थी, 1995-96 में बढ़कर 25.6 प्रतिशत हो गई।

iii) मृत्यु दर तेजी से गिरने के कारण जनसंख्या 2 प्रतिशत की दर से बढ़ी। शुद्ध उपभोग 1.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की साधारण दर से बढ़ा।

iv) भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रभावशाली रही है। भारत की औद्योगिक क्षमता का विविधीकरण व विस्तार एक प्रमुख सफलता रहा है। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र ने प्रमुख भूमिका अदा की है। उपभोक्ता वस्तुओं और आधारभूत वस्तुओं जैसे इस्पात व सीमेंट में देश ने आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। उर्वरक, दूरसंचार जैसे उद्योगों की क्षमता निरंतर बढ़ रही है। पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन काफी प्रभावशाली रहा है और अब भारत इस स्थिति में है कि वह अपने अधिकतर उद्योगों की संवृद्धि स्तर बनाए रख सकता है चाहे यह कपड़ा उद्योग हो, खाद्य प्रसंस्करण हो, या रसायन या चीनी, बिजली या परिवहन हो।

2) **औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक** (आधार 1993-94 = 100) 1950-51 19.2 से बढ़कर 1995-96 में 283.3 हो गया। यह वृद्धि 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी अधिक है। तैयार इस्पात का उत्पादन 1950-51 में 10 लाख टन से बढ़कर 1999-00 में 272 लाख टन हो गया। इसी अवधि में सीमेंट का उत्पादन 27 लाख टन से बढ़कर 100 लाख टन हो गया। कोयले का उत्पादन 323 लाख टन से बढकर 3220 लाख टन हो गया। बिजली उत्पादन 51 करोड़ किलोवाट से बढ़कर 480.7 करोड़ किलोवाट हो गया। कच्चा तेल का उत्पादन 3 लाख टन से बढ़कर 319 लाख टन हो गया।

i) प्रति व्यक्ति अनाज का उपभोग 1951 में 334.2 ग्राम प्रतिदिन से बढ़कर 1995 में 468.5 ग्राम हो गया, लेकिन दालों की उपलब्धता 61 ग्राम से घटकर 38.1 ग्राम हो गई। लेकिन खाद्यान्न की कुल उपलब्धता 395 ग्राम से बढ़कर 498 ग्राम हो गई।

ii) खाद्य तेल और वनस्पति की उपलब्धता 1950-51 में 3.2 किलोग्राम से बढ़कर 1999-00 में 9.2 किलोग्राम हो गई। कपड़े का प्रतिव्यक्ति उपभोग 11 मीटर से बढ़कर 30 मीटर हो गया। जीवन की अन्य सुविधाओं की उपलब्धता भी काफी बढ़ी है। साइकिल, स्कूटर, कार, ट्रक, टेलीफोन, कम्प्यूटर टेलीविजन, फ्रिज आदि का प्रयोग बढ़ा है। ये सब कागज की प्रगति के प्रतीक हैं।

3) **आर्थिक बुनियादी सुविधाओं, ऊर्जा, परिवहन तथा सिंचाई का विकास :** सफलता का एक और क्षेत्र है आर्थिक बुनियादी सुविधाएँ जो कि औद्योगिकरण का अधार है। सड़क, सड़क परिवहन, रेलवे तंत्र, और दूर संचार के जाल ने लोगों को जोड़ा है, देश के विभिन्न भागों में वस्तुओं का लाना ले जाना संभव बनाया है, और देश को सारे विश्व से जोड़ा है। इससे बाज़ार का आकार बढ़ा है। सिंचाई और बिजली परियोजनाओं ने कृषि और उद्योग को आगे बढ़ाया है। बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता ने शहरों और गाँवों के आधुनिकीकरण में सहायता पहुँचाई है।

4) **निर्यात का विविधीकरण व आयात प्रतिस्थापन :** औद्योगीकरण और आयात प्रतिस्थापन नीतियों के कारण भारत की पूँजीगत वस्तुओं के आयात पर निर्भरता घटी है। इसी तरह पहले हम जिन उपभोक्ता वस्तुओं का आयात करते थे उन्हें अब हम अपने देश में ही बनाने लगे हैं। निर्यात की वस्तु संरचना में परिवर्तन आया है। अब हम विनिर्मित वस्तुओं, खनिज अयस्क और इंजीनियरिंग वस्तुओं का निर्यात करने लगे हैं।

II) सामाजिक प्रगति के सूचक

1) **भारत के लोगों की जीवन प्रत्याशा बढ़ी :** 1951 में जो औसत आयु 33 वर्ष थी 1995 में बढ़कर 61 वर्ष हो गई। यह मुख्यत: चेचक और प्लेग के उन्मूलन तथा मलेरिया और हैजे का प्रकोप कम होने

के कारण है। अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण शिशु मृत्युदर बहुत कम हो गई है। हालाँकि, भारत में अल्पपोषण कमजोर स्वास्थ्य का एक बहुत बड़ा कारण है, फिर भी औसत आयु बढ़ना एक बहुत बड़ी सफलता है।

अन्य सामाजिक सूचक भी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रगति की ओर इशारा करते हैं। 1950-51 में जन्मदर 39.9 प्रति हजार से घटकर 1995-96 में 28.3 हो गई। मृत्युदर तेज़ी से गिरकर 27.4 से 9 हो गई। शिशु मृत्युदर 146 प्रति हजार से घटकर 74 हो गई। स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि तेज़ी से गिरती मृत्युदर के कारण हुई है।

2) **अच्छी शिक्षा प्रणाली का विकास जिससे विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई:** भारत में शैक्षिक योग्यता प्राप्त प्रशिक्षित श्रम शक्ति का विश्व में तीसरा सबसे बड़ा समूह नियोजन की एक भारी सफलता है। यह देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण संभव हुआ है। अन्य विकासशील देशों की तुलना में आगे होने के कारण भारत अब मध्य पूर्व, एशिया व अफ्रीका के देशों को तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान कर रहा है। यह एक गर्व का विषय है।

7.6.2 नियोजन की विफलताएँ

आइए, अब देखें कि भारत में नियोजन की क्या कमियाँ रही हैं। पिछले 45 वर्षों में सरकार लोगों को बताती रही हैं कि देश में विकास-नियोजन का उद्देश्य समाजवादी ढाँचे पर आधारित समाज की स्थापना करना है। नारे लगाने से कोई अंतर नहीं पड़ता। अंतर इस बात से पड़ता है कि उद्देश्य पूरा हुआ है या नहीं। मूल प्रश्न यह है कि क्या पिछड़ों, कमजोरों व दलितों की दशा सुधरी है या नहीं? क्या विकास के परिणाम समाज के सबसे निचले वर्गों तक पहुँचे हैं या नहीं? इस संबंध में जो भी परिणाम मिले हैं उन्हें सीमित ही कहा जा सकता है जो कि निम्नलिखित से स्पष्ट है :

1) **सभी लोगों को एक आधारभूत न्यूनतम जीवन स्तर दिलाने में विफलता :** नियोजन का यह आधारभूत उद्देश्य ही पूरा नहीं हुआ है। इस दिशा में बहुत ही कम कार्य हुआ है।

2) **आय व सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने में विफलता :** ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह पता चले कि 50 वर्ष के आर्थिक विकास के कारण आय का पुनर्वितरण निचले वर्गों के पक्ष में हुआ है। 1950-51 व 1995-96 के बीच प्रति व्यक्ति आय 1.7 प्रतिशत ही बढ़ी है, लेकिन इसका भी वितरण असमान रहा। ऐसा अध्ययनों से पता चला है। सबसे निम्न वर्ग के रूप में जनसंख्या के 20 प्रतिशत भाग की हालत और बिगड़ी है और इससे ऊपर के 20 प्रतिशत की हालत लगभग स्थिर रही है। जबकि ग्रामीण गरीबी और बढ़ी है, इस बात के प्रमाण हैं कि आय व सम्पत्ति सभी वर्ग के हाथ में ही केन्द्रित हुई है। चौथी पंचवर्षीय योजना में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि नियोजन में किए गए प्रयासों से असमानताएँ नहीं घट पाई हैं।

3) **सभी शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्तियों को उत्पादक रोज़गार दिलाने में विफलता :** नियोजन की प्रगति के साथ-साथ बेरोज़गारी व अल्परोज़गार की समस्या भी बढ़ रही है। बेरोज़गारी की संख्या प्रथम योजना के बाद से निरंतर बढ़ रही है। पिछले वर्षों से शेष चली आ रही बेरोज़गारी की तो बात दूर रही योजना के दौरान श्रम शक्ति में शामिल नए लोगों को भी रोज़गार नहीं मिल पाता है। योजना आयोग ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

4) **बुनियादी सुविधाओं की कमी :** सार्वजनिक क्षेत्र की बुनियादी सुविधाओं परियोजनाओं के निर्माण, परिचालन और रख-रखाव में व्याप्त कमी नियोजन की एक और विफलता है। 1980 के दशक के मध्य से तो स्थिति, विशेषतया बिजली, रेलवे और सड़कों की और गंभीर हो गई है। अधिकतर सयंत्र क्षमता से कम (लगभग 50 प्रतिशत) पर कार्य कर रहे हैं। रेलें और सड़कों पर बहुत अधिक भीड़-भाड़ है। हमारे नियोजकों की विफलता इसमें है कि वे इन कमियों का पहले से अनुमान नहीं लगा पाए। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था अपनी पूरी क्षमता से आगे नहीं बढ़ पाई।

5) **छोटे और सीमांत किसानों की अनेदेखी और भूमि का पुनर्वितरण :** किसानों के भूमि के स्वत्व का हस्तांतरण का नीतिगत निर्णय (यानि भूमि सुधार) ठीक ढंग से लागू नहीं किए गए। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आदि जैसे कुछ राज्यों में कुछ प्रयत्न हुए। सरकार ने भी यह माना है कि भूमि सुधार धीमे रहे हैं और राज्य सरकारों को इनको तेजी से लागू करने की कोई इच्छा भी प्रतीत

नहीं होती। इसके कारण कृषि को प्रगतिशील बनाने और संसाधनों का समान वितरण करने में रुकावटें आती हैं।

6) **कृषि क्षेत्र में प्रादेशिक संतुलन लाने की अनदेखी :** भारत में नियोजन की यह एक बड़ी विफलता है। भारत की औसत भूमि उत्पादिकता पूर्वी एशिया की तेजी से बढ़ती विकासशील अर्थव्यवस्थाओं और चीन की अपेक्षा काफी कम है। उदाहरणत:, चीन की भूमि उत्पादिता भारत की चार गुना है। भारत की यह कमी इस कारण से है कि यहाँ चुने हुए प्रदेशों में ही कृषि को उत्साहित किया गया और बाकी प्रदेशों को मानसून की वर्षा के भरोसे छोड़ दिया गया।

निष्कर्ष यह है कि नियोजन के लक्ष्यों को निर्धारित करने और इनको लागू करने के बीच बहुत बड़ा अंतर रहा है। योजना दस्तावेज दार्शनिक और शैक्षिक तौर पर तो बहुत अच्छे थे, लेकिन सिद्धान्त और व्यवहार में एक बहुत बड़ा अंतर होने के कारण इसके कार्यान्वयन में अनेक कमियाँ रही हैं।

7.7 नियोजन का बदलता परिप्रेक्ष्य

पूर्णतया निर्देश द्वारा नियोजन (planning by direction) उतना ही संभव नहीं है जितनी कि पूर्णतया निर्बाध (Laissez Faire) अर्थव्यवस्था। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

i) निर्देश द्वारा नियोजन में निर्देश देने वाला अपने फैसलों से होने वाले सभी परिणामों का अंदाज़ा नहीं लगा सकता। आर्थिक प्रणाली बहुत जटिल होती है। इस जटिलता के कारण ही निर्देश द्वारा नियोजन असंतोषजनक रह जाता है। इस प्रकार के नियोजन में किन्हीं वस्तुओं की कमी और कुछ की अधिकता होने की संभावना बनी रहती है। बाज़ार द्वारा नियोजन में ऐसा होने की संभावना कम रहती है क्योंकि कीमतों में निरंतर परिवर्तन द्वारा मुद्रा प्रवाह स्वत: संचालित होती रहती है।

ii) निर्देश द्वारा नियोजन में लचीलापन नहीं होता। एक बार योजना बनाने के बाद यदि उसके एक भाग में परिवर्तन करना हो तो सारी योजना को ही बदलना पड़ता है, और सारी योजना को बार-बार बदलना कोई आसान बात नहीं है। कीमत प्रक्रिया तो माँग और उत्पादन के परिवर्तनों को संभाल लेती है, जबकि निर्देश द्वारा नियोजन में यह लचीलापन नहीं होता।

iii) योजना बनाते समय कितनी भी पूर्ण रही हो जैसे-जैसे योजना आगे बढ़ती है इसके मार्ग में अपूर्णताएँ आनी प्रारंभ हो जाती है, क्योंकि हालात बदलते हैं किसी क्षेत्र में कोई हड़ताल या दुर्घटना हो सकती है जिससे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ सकता है।

iv) निर्देश द्वारा नियोजन में अत्यधिक मानकीकरण (standardization) होता है। यह इसलिए नहीं किया जाता है कि ऐसा करना अच्छा है बल्कि इसलिए किया जाता है कि, इससे योजना बनाने का काम आसान हो जाता है। अत्यधिक मानकीकरण से प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है और उत्पादक अपने उत्पाद की क्वालिटी में सुधार लाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते। इससे प्रौद्योगिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी रुक जाती है।

v) निवेश द्वारा नियोजन की कठिनाइयों से कोई जितना ही बचना चाहता है, नियोजन उतनी ही महँगी होती चली जाती है। बिना जानकारी के योजना नहीं बन सकती। इस हेतु जनगणनाओं, फार्मों व कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। जितना अच्छा इसे बनाने की कोशिश करते हैं उतने ही अधिक नियोजकों की आवश्यकता होती है। बाज़ार प्रक्रिया इन नियोजकों का स्थान ले सकती है, इससे संभव है ये नियोजक और लाभकारी कामों पर लगाए जा सकते हैं।

अपनी जटिलता के कारण निर्देश द्वारा नियोजन लोकतांत्रिक नियंत्रण कम हो जाता है। यह योजना लोग या पार्लियामेंट नहीं बनाती, सरकारी कर्मचारी बनाते हैं क्योंकि इसमें हज़ारों मेल बिठाने पड़ते हैं। इस संबंध में जितना अधिक निर्देश देगा उतना ही उस पर उसका नियंत्रण कम होता जाता है जब सरकार केवल कुछ बातें करती हैं तब उन पर आसानी से निगाह रख सकती है, लेकिन सरकार यदि सभी कुछ करती है तो उसे स्वयं अपने ऊपर निगाह रखना कठिन हो जाता है।

इन सबसे यह सीख मिलती है कि जहाँ तक संभव हो बाज़ार स्वतंत्र रहे। सरकार अपने नियोजन उद्देश्य पूरे करने के लिए बाज़ार को प्रभावित करे और बाज़ार उद्यमियों को प्रभावित करेगा। सरकार अपने योजना लक्ष्य निर्देश द्वारा नहीं, बल्कि बाज़ार को प्रभावित करके प्राप्त करे। इस हेतु किसी भी वस्तु या सेवा का उत्पादन उत्साहित या निरुत्साहित करने के लिए कार व आर्थिक सहायता (subsidy) की सहायता ली जा सकती है।

भारत में नियोजन के बारे में प्रश्न यह नहीं है कि योजना हो या न हो, बल्कि यह है कि इसका क्या रूप हो? सरकार बाज़ार प्रक्रिया अपनाए (यानि सांकेतिक नियोजन) या फिर इसे नियंत्रित कर निर्देश द्वारा नियोजन अपनाए। मान लीजिए सरकार औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना चाहती है, जिसमें उत्पादन संबंधी निर्णयों पर नियंत्रण की आवश्यकता है। सरकार ऐसा कई प्रकार से कर सकती है। उदाहरणत:

i) उत्पादन संबंधी निर्णयों पर सीधा नियंत्रण रखने हेतु सरकारी निगमें, यानि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम, स्थापित कर सकती है,

ii) ऐसे कानून बना सकती है जिसमें यह सुनिश्चित हो कि यदि कोई किसी उत्पाद का उत्पादन करना चाहता है तो उसे सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक होगा,

iii) विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन प्रोत्साहित या निरुत्साहित करने हेतु राजकोषीय, मौद्रिक व कर नीतियाँ अपना सकती है।

भारत के संदर्भ में सरकार ने अंतिम विकल्प की बजाय प्रथम दो विकल्पों का अक्सर प्रयोग किया है। औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में बड़े पैमाने पर निवेश भारत में एक मज़बूत औद्योगिक आधार स्थापित हुआ। लेकिन 1960 के दशक के मध्य से लचीलेपन की कमी तथा नौकरशाही द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप ने समस्याएँ खड़ी करनी शुरू कर दीं। इससे 1965-80 की अवधि में औद्योगिक विकास धीमा होने लगा। 1980-90 के दशक में नियोजकों द्वारा अपनाए गए नियंत्रण कमज़ोर पड़ने लगे और वे अब राजकोषीय व मौद्रिक नियोजन का अधिक सहारा लेने लगे।

कृषि क्षेत्र, सांकेतिक नियोजन का एक उदाहरण है। कृषि विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार ने मूल्य नीति, ऋण नीति व संस्थागत तंत्रों का सहारा लिया। 1970 के दशक के अंत से सारे विश्व में नियोजन प्रक्रिया में भारी परिवर्तन हो रहे हैं। इसे उस समय और बल मिला जब पुराने सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की अर्थव्यवस्थाएँ ढहने लगीं, जबकि दूसरी ओर पूर्वी और दक्षिण पूर्वी यूरोप की अर्थव्यवस्थाएँ शानदार प्रदर्शन कर रही थी और बाज़ार द्वारा नियोजन पर जोर दे रही थी।

भारत भी जुलाई 1991 से इसी दिशा में चल रहा है। औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली समाप्त कर दी गई है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की सूची बहुत छोटी कर दी गई है। सरकार उन सभी क्षेत्रों से अपने आपको हटा रही है जहाँ उनकी आवश्यकता ही नहीं थी। अब समस्या यह होने लगी है कि प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य आदि से भी सरकार हटने लगी है जहाँ कि वस्तुत: मजबूत सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यह एक अवांछनीय प्रवृत्ति है जो 1990 के दशक से ही नजर आ रही है।

बोध प्रश्न 4

1) आपके विचार में भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन प्रक्रिया की तीन बड़ी विफलताएँ कौन सी हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आपके विचार में भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन प्रक्रिया की तीन प्रमुख सफलताएँ क्या रही हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) क्या भारत में नियोजन प्रक्रिया के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है? आपके विचार में पिछले कुछ वर्षों में जो परिवर्तन हुआ है वह परिवर्तन सही दिशा में है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) भारत में एक ही समय पर विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष नियोजन विधियाँ अपनाई गई हैं। कौन से क्षेत्र में मुख्यत: प्रत्यक्ष और कौन से में अप्रत्यक्ष विधि अपनाई गई? संक्षेप में विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.8 सारांश

भारतीय विकास योजनाओं की समीक्षा से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

सकल घरेलू उत्पाद के रूप में भारत का समष्टि आर्थिक प्रदर्शन केवल साधारण रहा है। यह ध्यान में रखते हुए कि नियोजन की लगभग सारी अवधि में जनसंख्या 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी है, प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी कम रही है।

दूसरे, हालांकि भारत में समय-समय (1965-67, 1972-74, 1979-80 व 1991-94) पर काफी मुद्रास्फीति होती रही है, फिर अंतरराष्ट्रीय स्तर की तुलना में यह मुद्रास्फीति साधारण ही रही है। इस सफलता की पीछे दो प्रमुख कारण हैं। एक तो खाद्यान्न की उत्पादन पर पूरी नियोजन अवधि में 3 प्रतिशत बनी रहीं। दूसरे, घरेलू बचत दर में निरंतर वृद्धि हुई और यह पचास के दशक में 10 प्रतिशत भी जो आज बढ़कर 24 प्रतिशत हो गई, यह एक महत्त्वपूर्ण वृद्धि है।

तीसरे, मानव के रूप में पूँजी निर्माण काफी बढ़ा है। भारत में आज कुशल मज़दूरों का एक बहुत बड़ा आधार है, हालाँकि यह कुशलता विभिन्न क्षेत्रों के बीच अलग-अलग है। अत: यह निष्कर्ष निकालना एक जल्दबाज़ी होगी कि भारतीय नियोजन 'पूरी तरह विफल' या फिर 'पूरी तरह सफल' रही है।

भारत में नियोजन की प्रमुख कमजोरियाँ ये रही हैं :

प्रथम, उत्पादन के बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अकुशलता काफी फैली है, जैसे बिजली उत्पादन, परिवहन, इस्पात, उर्वरक व कुछ ऊँची लागत वाली टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ। कोई ऐसा स्पष्ट कारण नहीं दिखता कि

क्यों बिजली उत्पादन क्षमता का केवल 50 प्रतिशत ही उत्पादन हो रहा है। इस्पात संयंत्रों तथा बिजली संयंत्रों में कुशलता में सुधार लाने की अभी बहुत गुंजाइश है।

दूसरे, भारतीय नियोजन ने अभी भी लोगों की बहुत बड़ी संख्या को गरीबी रेखा के नीचे से नहीं निकाला हैं गरीबी के आँकड़े बताते हैं कि भारत में बड़े स्तर पर गरीबी (केलोरी उपभोग के आधार पर) है।

तीसरे, भारत अपनी जनसंख्या का बड़ा भाग उद्योगों में लगाने में सफल नहीं हो सका है। व्यावसायिक ढाँचा लगभग वही है। ऐसा जनसंख्या वृद्धि व पूँजी प्रधान उद्योगों पर ज़ोर देने के कारण है।

अंत में, विफलता का एक कारण महालनोबिस योजना में भी ढूँढा जा सकता है, जिसमें एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नियोजन के सभी तर्कसंगत परिणामों का अंदाजा नहीं लगा पाए। एस. चक्रवर्ती के अनुसार भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने निवेश की चरणबद्धता से संबंधित बहुत से प्रश्नों की अनदेखी की है। इससे भी अधिक 1950 के दशक में जब स्थिति अनुकूल थी भूमि सुधार प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किए जा सके और साथ ही पारस्परिक कृषि का आगत आधार भी नहीं बदला, यानि कुल मिलाकर कृषि परिवर्तन अधूरा ही रहा।

सार यह है कि नियोजन प्रक्रिया सामाजिक आर्थिक बुनियादी सुविधाएँ दिलाने, भारी व आधारभूत उद्योगों के विकास द्वारा औद्योगिक आधार बनाने में सफल रही है, जबकि रोज़गार दिलाने, गरीबी हटाने, आय व सम्पत्ति कुछ हाथों में केन्द्रित होने से रोकने हेतु संस्थानात्मक सुधार लाने में विफल रही है। विकास के लाभ पहले से सम्पन्न वर्ग व शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित रहे हैं। नियोजन की इन मूलभूत विफलताओं के कारण इसकी रणनीति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। हमें इस तथ्य का सामना करना चाहिए कि हम नियोजन के प्रमुख उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पाए हैं। ये उद्देश्य लगभग अभी उतने ही दूर हैं जितने कि नियोजन के प्रारंभ में थे। नियोजन के ये उद्देश्य भारत के सभी लोग स्वीकार करते हैं। ये हैं : गरीबी उन्मूलन सभी के लिए उत्पादक रोज़गार के अवसर, अधिक समतावादी समाज का निर्माण।

7.9 शब्दावली

संतुलित विकास : अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास।

पूँजी प्रधान : ऐसे तकनीक जिनमें श्रम की तुलना में पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है।

राजकोषीय वर्ष : एक अप्रैल को प्रारंभ होकर अगले वर्ष 31 मार्च को समाप्त होने वाला वर्ष।

राजकोषीय नीति : सरकारी आय-व्यय से सम्बद्ध नीति अर्थव्यवस्था के आवश्यकता के अनुरूप कर एवं व्यय का समायोजना। इस नीति में सरकारी बजट में आने वाली चार बातें शामिल हैं : कराधान व्यय, ऋण और घाटा।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल : सभी लागतों में एक साथ वृद्धि से उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धि।

निर्बाध अर्थव्यवस्था : एक अर्थव्यवस्था जिसके आर्थिक कार्यों में कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता।

मौद्रिक नीति : मुद्रा पूर्ति के नियंत्रण के बारे में नीति।

सार्वजनिक उपयोगिताएँ : वह उद्यम जो किसी आधारभूत एवं अनिवार्य सेवा प्रदान करती है, जैसे स्थानीय यात्रि परिवहन, गैस, बिजली, सफाई जैसी सेवाएँ।

सार्वजनिक वस्तुएँ : वे वस्तुएँ जिनकी मुख्य विशेषता है उपभोग की अविभाज्यता, यदि कोई सेवा प्रदान की जा रही है तो उससे किसी को वंचित नहीं

किया जा सकता। यह सेवा सबको समान रूप में प्राप्त होती है। उदाहरणस्वरूप, राष्ट्रीय सुरक्षा, स्वच्छ हवा दूरदर्शन एवं रेडियो प्रसारण।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chakravarty, Sukhamoy, (1987): "*Development Planning: The Indian Experience*", Oxford University Press.

Dutt R. and Sundhram, K.P.M., (2001) : "*Indian Economy*", S. Chand & Co. Ltd. New Delhi, Chapter 8,9,16

Eswaran, Mukesh & Kotwal, Ashok, (1994) : "*Why Poverty Persists in India*", Oxford University Press, New Delhi, Chapter 1, PP. 1-25

Kapila, U. (1996) Edited : "*Indian Economy Since Independence*", 7th Edition, Academic Foundation- TRP, Delhi, Chapter 1-3 PP. 25-45

Vaidyanathan A. (1995) : "*The Indian Economy, Crisis, Responses and Propects*", Orient Longman, New Delhi.

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) बाज़ार प्रणाली की सीमाएँ

   i) समानता

   ii) सार्वजनिक वस्तुएँ

   iii) बाहरीपन

   iv) प्राकृतिक एकाधिकार

   (और वितरण के लिए भाग 7.2 देखें)

2) प्रत्यक्ष दृष्टिकोण से अभिप्राय सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम द्वारा आर्थिक कार्य का स्वामित्व, जबकि अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण बाज़ार प्रणाली के माध्यम से है। (विवरण हेतु भाग 7.2 देखिए)

3) भाग 7.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) राज्य की भूमिका का महत्त्व इस बात से पता चलता है कि बाज़ार प्रक्रिया कुछ मूल सामाजिक उद्देश्यों जैसे प्राथमिक शिक्षा, आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाओं आदि को प्राप्त करने में असफल रहती है।

बोध प्रश्न 3

1) ख)

2) ग)

3) ग)

4) ग)

5) भारत में आर्थिक विकास के आधारभूत उद्देश्य और प्रश्न ये रहे हैं : संवृद्धि, अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण आत्म-निर्भरता तथा सामाजिक न्याय (मुख्यत: आर्थिक असमानताओं में कमी व गरीबी उन्मूलन)। (भाग 7.4 को ध्यान से पढ़िए)

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 7.6.2 देखिए।

2) उपभाग 7.6.1 देखिए।

3) केन्द्रीय नियोजन में बहुत सी कमियाँ पाई गई हैं। इससे विकेन्द्रित एवं सांकेतिक नियोजन की आवश्यकता महसूस होती है। भारतीय नियोजकों ने इस दिशा में प्रयत्न किए हैं (भाग 7.7 पढ़िए)।

4) भारत में कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष जबकि औद्योगिक क्षेत्र में अप्रत्यक्ष नियोजन विधियाँ अपनाई गई। (विवरण हेतु भाग 7.3 व 7.7 पढ़िए)।